8X4/32

संस्कृत विभाग (शिवाजी कॉलेज)

योगदर्शन

सामान्य परिचय – महर्षि पतञ्जलि को योगदर्शन का प्रतिष्ठापक आचार्य माना जाता है। भारतीय विचारधारा में योगसाधना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त सभी दार्शनिक सम्प्रदाय आत्मसाक्षात्कार या मोक्ष की प्राप्ति के लिए योगसाधना को आवश्यक मानते हैं। भारतीय ज्ञानपरम्परा में उपनिषद्, महाभारत, भगवद्गीता, जैन और बौद्धमतों में योग सम्बन्धी क्रियाओं का विवेचन प्राप्त होता है, तथापि महर्षि पतंजलि ने ही सर्वप्रथम दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में योग का विवेचन किया। इसलिए इसे पातञ्जलदर्शन भी कहा जाता है। योगदर्शन सांख्य की तरह द्वैतवादी है। योगदर्शन सांख्य के 25 तत्त्वों के साथ ईश्वर की सत्ता में भी विश्वास करता है। इसलिए योग को सेश्वर सांख्य तथा सांख्य को निरीश्वर सांख्य कहा जाता है।

योग का अर्थ – योग शब्द युज् धातु से घञ् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है जिसके अर्थ निम्न है –

(१) युज्-समाधौ के अनुसार = समाधि

(२) युजिर्-योगे = जोड़/मिलना

(३) युज्-संयमने = संयमन

भारतीय विचारधारा में योग शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है। योग शब्द का अर्थ संयोजित करने के अर्थ में, परमात्मा से जीवात्मा के मिलन के अर्थ में होता है। भगवद्गीता में योग शब्द का अर्थ योग को कर्म में कुशलता प्राप्त करना (योग: कर्मसु कौशलम्), समत्वभाव (समत्वं योग: उच्यते), ब्रह्मभाव आदि भी कहा जाता है।

योगशास्त्र में योग का अभीष्ट अर्थ समाधि अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध स्वीकार किया गया है –

१. **योग: समाधि: स च सार्वभौम: चित्तस्य धर्म:** । अर्थात् योग समाधि है और यह चित्त की भूमियों में रहने वाला चित्त का धर्म है। योगदशन में चित्त की पाँच भूमियां मानी गयी हैं –
   - **क्षिप्त** – रजोगुण का प्रधानता – चित्त अत्यन्त चंचल एवं अस्थिर होता है।
   - **मूढ** – तमोगुण की प्रधानता – चित्त विवेकशून्य, कर्तव्त-अकर्तव्य के बोध से रहित होता है।
   - **विक्षिप्त** – विक्षेप के कारण गौण होने के कारण योग की कोटि में नहीं आती। इसमें सत्वगुण की अधिकता
   - **एकाग्र** – सत्त्वगुण की प्रधानता इसमें रजोगुण एवं तमोगुण दबे रहते हैं। सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था
   - **निरुद्ध** – चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध यह असम्प्रतात समाधि की अवस्था है ।

२. **योगश्चितवृत्तिनिरोध:** - चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। योगदर्शन में चित्त शब्द का प्रयोग बुद्धि या अन्त:करण के लिए किया जाता है – **चित्तशब्देनान्त:करणं बुद्धिमुपलक्ष्यति।**

वृत्ति – चित्त जिस जिस स्थिति या रूप में रहता है, वे स्थितियाँ चित्त की वृत्तियाँ हैं । ये वृत्तियाँ हैं- १.सात्त्विक वृत्तियाँ २. राजस वृत्तियाँ ३. तामस वृत्तियाँ ।

योगदर्शन में चित्त की पाँच वृत्तियाँ मानी गयी हैं –

१. **प्रमाण** – सत्य ज्ञान को प्रमा कहते हैं। प्रमा का साधन प्रमाण है। अर्थात् जिन साधनों से प्रमा की उपलब्धि होती है उन्हें प्रमाण कहते हैं । योगदर्शन तीन प्रमाण स्वीकार करता है – १. प्रत्यक्ष २. अनुमान ३. आगम

२. **विपर्यय** – मित्याज्ञान को विपर्यय कहते है। जैसे रस्सी में सर्प की प्रतीति ।

३. **विकल्प** – यह शब्द ज्ञान से उत्पन्न होने वाली वृत्ति है । इससे ऐसे विषय का ज्ञान होता है जिसका संसार में अभाव होता है। जैसे बन्ध्यापुत्र

Scanned with CamScanner

४. **निद्रा** – सुषुप्तावस्था की वृत्तियों को निद्रा कहते हैं। इसमें जाग्रत एवं स्वप्न की अवस्थाओं का अभाव होता है।

५. **स्मृति** – यह संस्कारजन्य ज्ञान है।

योग के अंग (अष्टांग योग)

चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए योग दर्शन प्रणीत साधना-पद्धति में आठ सोपान हैं। इसी लिए इसे अष्टांग योगमार्ग कहते हैं। योग के आठ अंग निम्नलिखित हैं-

१. यम २. नियम ३. आसन ४. प्राणायाम ५. प्रत्याहार ६. धारणा ७. ध्यान ८. समाधि।

१. **यम** – शरीर, मन और वाणी का संयम यम कहलाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का पालन यम के अन्तर्गत आता है।

- अहिंसा - अहिंसा से तात्पर्य प्रत्येक समय में मनसा, वाचा, कर्मणा सभी जीवित प्राणियों के प्रति द्वेषभाव एवं हिंसा के परित्याग से है।
- सत्य – सत्य से तात्पर्य मिथ्या वचन का परित्याग करने से है।
- अस्तेय – चौरवृत्ति का परित्याग या दूसरों के धन को न चुराना अस्तेय है।
- ब्रह्मचर्य – मन, वाणी एवं कर्म से काम-सुख या स्त्री प्रसंग का परित्याग ब्रह्मचर्य है।
- अपरिग्रह- आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति का संचय न करना अपरिग्रह है।

२. **नियम** – भावात्मक सद्गुणों का अभ्यास नियम कहलाता है। इसके अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आते हैं।

- शौच – बाह्यशरीर की स्नान आदि के द्वारा शुद्धि तथा करुणा, मुदिता आदि गुणों से चित्त की शुद्धि।
- सन्तोष – समुचित प्रयास से जो भी प्राप्त हो उसे पर्याप्त मानना।
- तप – शीतोष्ण सहन करने का अभ्यास, कठिन व्रत आदि का पालन।
- स्वाध्याय – धर्मग्रन्थों एवं श्रुतियों का अध्ययन करना।
- ईश्वरप्रणिधान – ईश्वर का ध्यान करना।

३. **आसन** – स्थिरसुखमासनम् अर्थात् जो शरीर को सुख देने वाले तथा चित्त को स्थिर रखने वाले हो, उसे आसन कहते है। जैसे पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिक, दण्डासन आदि।

४. **प्राणायाम** –प्राणवायु के संयम को प्राणायाम कहते है। प्राणायाम शरीर एवं मन को दृढता प्रदान करता है।

५. **प्रत्याहार** –इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाना प्रत्याहार कहलाता है। यह इन्द्रियों का संयम है।

६. **धारणा**- देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। अर्थात् चित्त की सात्त्विक वृत्ति को किसी बाहरी या भीतरी प्रदेश में लगाना धारणा है।

७. **ध्यान** – तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। अर्थात् चित्त को किसी एक विषय में एकाग्र करना ही ध्यान है।

८. **समाधि** – तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वशून्यमिव समाधिः। अर्थात् इस अवस्था में बाह्य जगत् के साथ जीव का सम्बन्ध टूट जाता है और वह अपने स्वरूप नित्य पद को प्राप्त कर लेता है।
योगदर्शन में समाधि दो प्रकार की होती है- १. सम्प्रज्ञात समाधि २. असम्प्रज्ञात समाधि

१. **सम्प्रज्ञात समाधि** – चित्त की एकाग्रभूमि का वृत्तिनिरोध। राजस और तामस वृत्तियों का पूर्ण निरोध होता है। इसमें केवल सात्त्विक वृत्तियाँ पूर्णरूप से उदित रहती है। इस अवस्था में साधक को

Scanned with CamScanner

समग्र वस्तुओं को वास्तविक, निर्भ्रान्त एवं युगपद् ज्ञान होता है। इसलिये इस समाधि को सम्प्रज्ञात समाधि कहते है। सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन्निति सम्प्रज्ञातं समाधिः।

सम्प्रज्ञात समाधि के सिद्ध होने से प्रकृति और पुरुष – इन दो अन्तिम तत्त्वों का विविक्तज्ञान भी हो जाता है। यही विवेकख्याति है। तत्त्वों का पूर्ण ज्ञान होने के कारण इसे तत्त्वज्ञान या सम्यग्ज्ञान भी कहते है। विवेकख्याति का लाभ कराने के कारण इसे सम्प्रज्ञात योग कहा जाता है। इस समाधि को धर्ममेघसमाधि भी कहा जाता है। सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि चार सोपानों में होती है-

१. **सवितर्क** – समाधि की इस अवस्था में किसी स्थूल विषय पर चित्त एकाग्र होता है। जैसे किसी देवता की मूर्ति पर ध्यान केन्द्रित होना।

२. **सविचार** – यह समाधि की वह अवस्था है जिसमें साधक सतत् अभ्यास के परिणामस्वरूप स्थूल विषय का परित्याग करके पंचतन्मात्र, बुद्धि, अहंकार आदि सूक्ष्म एवम् अतिसूक्ष्म विषयों पर ध्यान केन्द्रित करता है।

३. **सानन्द** – यह समाधि की वह अवस्था है जिसमें सूक्ष्म विषयों पर केन्द्रित चित्त में सत्त्वगुण की अधिकता के कारण विशेष आनन्द की उत्पत्ति होती है।

४. **सास्मित** – यह समाधि की वह अवस्था है जिसमें साधक को केवल "मैं हूँ" का ज्ञान रहता है।

२. **असम्प्रज्ञात समाधि** – विरामप्रत्याभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः। अर्थात् ऐसी समाधि है जिसमें चित्त की सात्त्विक, राजस और तामस वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाता है, उसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते है। असम्प्रज्ञात समाधि में कोई आलम्बन अवशिष्ट नहीं होता। चित्त की ऐसी निरालम्ब अवस्था में केवल पूर्वज्ञान के संस्कार अवशिष्ट रहते हैं। व्यासभाष्य में इसे निर्बीज समाधि कहा गया है। असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार की होती है –

(क) भवप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि – भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्। अर्थात् भवप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि विदेहों तथा प्रकृतिजनों को होती है।

(ख) उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञात समाधि – उपायप्रत्ययो योगिनां भवति। अर्थात् उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञातसमाधि योगियों को होती है।

योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप

योगदर्शन ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता है। ईश्वर का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए कहा है –

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशय के परामर्श से रहित एक विशेष प्रकार का पुरुष ही ईश्वर है। योगदर्शन में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश क्लेश हैं। धर्म और अधर्म कर्म हैं। कर्म का फल विपाक है। उस विपाक से बनने वाले संस्कार वासना कहलाते है, वही आशय है। जो पुरुष इन चारों के भोग से अपरामृष्ट है, वही ईश्वर है।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्। अर्थात् ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज अपनी परकाष्ठा को प्राप्त होता है। योगदर्शन का ईश्वर सर्वज्ञ है, प्राचीन ऋषियों का भी गुरु है। (**पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्**)

Scanned with CamScanner

ईश्वर ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति एवं क्रियाशक्ति से युक्त है। वह कालाबाधित है एवं पूर्ण करुणामय है। यद्यपि उसमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं हैं, तथापि वह सृष्टि के आरम्भ के समय सभी भूत प्राणियों के कल्याण के लिए उपदेश देता है। योगदर्शन में ईश्वर की उपयोगिता ईश्वर-प्रणिधान या ईश्वर भक्ति में है। सभी कर्मों को ईश्वर को अर्पित करके सदैव उनकी भावना में रत रहना ईश्वर – प्रणिधान है। ईश्वर-प्रणिधान से चित्त के संशय, प्रमाद आदि विक्षोभ नष्ट हो जाते हैं। इसके अभ्यास से चित्त सम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त हो जाता है। ईश्वर के प्रतीक रूप प्रणव मन्त्र (ॐ) क जप करते हुए भक्त इस अवस्था को प्राप्त करता है। (तस्य वाचक: प्रणव:।) इससे भक्त अपनी प्रत्यक् चेतना में अवस्थित होकर कैवल्य प्राप्त करता है। योगदर्शन में बताया है कि उस ओम् का जप और उसके अर्थ (ईश्वर) की भावना करनी चाहिए। (तज्जपस्तदर्थभावनम्) अत: योगदर्शन में ईश्वर में को दयालु, अन्तर्यामी, वेदों का प्रणेता, धर्म, ज्ञान और ऐश्वर्य का स्वामी माना गया है।

योगदर्शन में कैवल्य का स्वरूप

कैवल्य –

१. तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्। अर्थात् असम्प्रज्ञात की अवस्था में पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, यही कैवल्य है।

२. तदभावत्संयोगाभावो हानं तद् दृशे: कैवल्यम् । अर्थात् सम्प्रज्ञातयोगलभ्य विवेकख्याति के द्वारा अविद्या की निवृत्ति हो जाने पर अनादि अविद्याकृत पुरुष-प्रकृति संयोग का अभाव होता है। यही दु:खों का एकान्तिक और आत्यान्तिक नाश है। अर्थात् यही पुरुष का कैवल्य है।
अविद्या के नाश से बुद्धि और पुरुष के संयोग का नाश होता है अर्थात् सांसारिक बन्धन की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। यही कैवल्य है।

३. सत्त्वपुरुषयो: शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्। अर्थात् बुद्धिसत्त्व और पुरुष की शुद्धि के समान हो जाने पर कैवल्य होता है।

४. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसव: कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति। अर्थात् पुरुषार्थ से रहित सत्त्वादि तीनों का प्रविलीन हो जाना कैवल्य है, या चित्तिशक्ति का अपने रूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही कैवल्य है।

Scanned with CamScanner